International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493; Impact Factor: RJIF 5.46
Received: 20-09-2020; Accepted: 05-10-2020; Published: 21-10-2020
Volume 2; Issue 4; 2020; Page No. 20-21

दलित समाज की वस्तुस्थिति

शिव कुमार रविदास

सहायक प्राचार्य, एस. बी. ए. एन. महाविद्यालय, मगध विश्विद्यालय, बोधगया, बिहार, भारत

प्रस्तावना

'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' की कथा अनेक परिस्थितियों से जूझते, व्यवस्था के सताये अबोध बालक और संघर्षशील बाल-मजदूर सौराज की है | लेकिन इसके लेखक प्रबुद्ध, शिक्षा जगत के प्रसिद्ध विद्वान और सुचिन्तक कहलाने वाले, डॉक्टर की उपाधि से युक्त साधन सम्पन्न प्रोफ़ेसर श्यौराज सिंह बेचैन जी हैं | इस आत्मकथा का नायक 1960-70 के भारत के सुदूर गांव 'नंदरोली' का निवासी है, जबकि लेखक ज्ञान-विज्ञान-तकनीक तथा आर्थिक रूप से सर्वविधि संपन्न भारत देश की राजधानी नई दिल्ली का निवासी है | यही स्थिति 'मुर्दहिया' के नायक, बालक तुलसी और लेखक, प्रोफ़ेसर तुलसी राम के वस्तुगत स्थितियों के अंतर में भी है | हाँ, जाति की समस्य इन आत्मकथाओं के नायकों और लेखकों के लिए समान है | फर्क बस इतना है कि आर्थिक विपन्नता में जो अछूतों को दग्ध करने वाली जाति-भेद की ऊष्णता उन बालकों, विशेषतः सौराज, को झुलसा रही थी, अब आर्थिक रूप से सम्पन्न लेखकों के लिए उस जाति-भेद की ऊष्णता की ताप कम हो गई है |

इतिहास द्वारा छला गया तथा व्यवस्था की मार के मारे जिस मृतप्राय दलित समाज की व्यथा की कथा डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने अपने बचपन को आधार बना कर अपनी आत्मकथा में कही है, उस मृतप्राय दलित समाज के प्राणलेवा घाव को आज़ादी के बाद भी कितना भरा गया है ? दलितों और शोषितों के पक्ष में शपथ खाने वाली ये सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएं येन-केन-प्रकारेण शोषक समुदाय को ही मजबूती प्रदान करते हुए नजर आ रही है | ऐसी स्थिति में दलित-मुक्ति के लिए इन संस्थानों से क्या उम्मीद की जा सकती है !

हालांकि सौराज के घर में उसके पिता की मृत्यु के बाद जो सदस्य बचे वे – अंधे, लाचार, अशिक्षित और गरीब ही थे | फिर भी यदि उन अंधे बब्बा, अंधे ताऊ और बालक सौराज को शारीरिक श्रम के मूल्य के रूप में ठीक-ठाक मेहनताना मिलाता, तो भी उनके दुःख-दर्द कुछ कम हो सकते थे |[1] उनकी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी हो सकती थी | बालक सौराज अपनी मां के साथ दर-दर की ठोकरें खाते नहीं फिरते | भिखारी के घर में यूं ही उसे और उसकी मां को जलील नहीं होना पड़ता |[2] पर इनके लिए लड़े कौन ? गांव के मजदूर भी तो असंगठित ही है न !

दलितों में 'सामूहिक चेतना' के विकास के रास्ते में कई सारी चुनौतियां हैं | 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में जिस दलित समाज का वर्णन है, वह समाज सामाजिक रूप से कई खण्डों में बंटा है | मुर्दा-मवेशी उठाने वाले रंगैया चमारों से खुद को श्रेष्ठ समझने वाले जाटव चमार के बीच सामाजिक गैर-बराबरी की खाई उतनी ही चौड़ी है, जितनी कि सवर्णों तथा दलितों के बीच है |[3] दलितों में भी ब्राह्मणवादी श्रेष्ठता-बोध की 'हैजमनी' समाई हुई है | इसी 'हैजमनी' के कारण समाज में ऊंच-नीच का भाव व्याप्त है | दलित समाज में इस प्रकार की 'हैजमनी' का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि दलित समाज में 'सामूहिक चेतना' की दिशा ठीक नहीं है | दलितों में 'सामूहिक चेतना' का ह्रास हुआ है | डॉक्टर अम्बेडकर का पूरा आन्दोलन इसी 'श्रेष्ठताबोध' की 'हैजमनी' को तोड़ने के लिए चलाया गया था | जिस समाज की पृष्ठभूमि में ऐसे आंदोलन तथा ऐसा आंदोलनकर्त्ता हो, उस समाज में इस प्रकार के सामाजिक भेद-भाव की प्रवृत्ति तथा आपसी दुराव के आ जाने से तो यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस समाज की 'सामूहिक चेतना' का ह्रास हुआ है |

स्त्रियों के प्रति दोहरा मानदंड दलित समाज में भी मौजूद हैं | 'मुर्दहिया' में वर्णित दलित समाज में स्त्रियों के यौन-सम्बंधी समस्या पर स्त्री के परिवार को 'जाति बहिष्करण' का कठोर दंड दिया जाता था, जबकि उसी अपराध (यदि इसे अपराध माना जाय तो ?) में संलग्न पुरुष के लिए किसी भी दंड का प्रावधान नहीं दिखाया गया है |[4] जिस समाज में स्त्री तथा पुरुष के लिए दोहरा मानदंड हो वह समाज उन्नति नहीं कर सकता | उस समाज में शेष बची समता की भावना भी ख़त्म होती चली जायेगी | स्त्रियों को बराबरी का अधिकार दिलाने के लिए ही डॉक्टर अम्बेडकर 'हिन्दू कोड बिल' को क़ानूनी जामा पहनना चाह रहे थे | दलित वर्ग कामगार वर्ग है | इस वर्ग में स्त्री तथा पुरुष दोनों साथ-साथ काम करते हैं | अतः पारंपरिक रूप से दलित वर्ग के भीतर स्त्री तथा पुरुष में अपेक्षकृत अधिक समानता है, लेकिन अब सवर्ण समाज की नक़ल पर इस समाज में भी स्त्री तथा पुरुष के बीच असमानता बढ़ती जा रही है | यह भी दलितों की चेतना का उल्टी दिशा में बढ़ते जाने का सूचक है |

'मुर्दहिया' में वर्णित दलित समाज में 'डांगर न खाने के अभियान'[5] के सिलसिले में 'कुजाति घोषित'[6] करने जैसी प्रथा फिर शुरू हो गई, जो कि ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था की दंड संहिता का अंश है | डॉक्टर अम्बेडकर ऐसी दंड संहिताओं का जीवन भर विरोध करते रहे | यह 'मुर्दहिया' में वर्णित दलित समाज की चेतना को उल्टी दिशा में जाते हुए दिखाता है | इस समाज में चेतना का इस तरह ह्रास क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ जान पड़ता है, क्योंकि 'मुर्दहिया' का समाज सामाजिक-परिवर्तन के संघर्षों से कटा हुआ है| वैसे तो कई जगहों पर सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष चल रहा है, लेकिन उनमें एकरूपता और संगठन का अभाव है | परिणामतः ऐसे संघर्ष विफल होते चले जा रहे हैं | राज्य द्वारा फैलाई गई नई आर्थिक नीतियों के भ्रमजाल के कारण दलित वर्ग की नयी पीढ़ी में जिस प्रकार से सामाजिक सामूहिकता की भावना में कमी आई है, उससे समाज का भविष्य खतरे में पड़ता नजर आ रहा है | ऐसा हो सकता है कि आगे आने वाले समय में दलितों की स्थिति और ज्यादा ख़राब हो जाय | क्योंकि सामंतवाद तथा पूंजीवाद के गठजोड़ से बनी नयी व्यवस्था में पुराने जातिवादी-ब्राह्मणवादी

शोषक वर्ग नई विशेषताओं के साथ अस्तित्व ग्रहण करते जा रहे हैं | इस वर्ग की पहली नीति होगी वंचित वर्ग में 'सामाजिक चेतना' तथा 'सामूहिक चेतना' को पूरी तरह से समाप्त कर देना, ताकि वंचित वर्ग संगठित होकर संघर्ष व विद्रोह न कर सके |

दलित समाज की 'सामूहिक चेतना' को भ्रमित करने में नयी आर्थिक नीतियां महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है | यह जीवन के लिए ऐसे अस्पष्ट अवसर की घोषणा करती है कि पूरा का पूरा समाज उसके विभ्रम में फंसा रह जाता है | अतः समाज में संघर्ष और संतुलन की स्थिति पैदा ही नहीं हो पा रही है | फिर समाज में 'वास्तविक चेतना' विकसित हो ही कैसे सकती है !

दलित वर्ग में जब भी कभी शोषकों के विरुद्ध आक्रोश पैदा होता है, तो पूरी राज्य मिशनरी उसके आक्रोश तथा विद्रोह को दबाने में लग जाती है | वह दलितों में फूट डालने के लिए साम, दाम, दंड, भेद- सभी तरह के हथकंडों का इस्तेमाल करती हैं | दलित वर्ग भी उनकी इस चाल में फंस जाता है | वे इस व्यवस्था के छलावे में भुलाये रह जाते हैं | परिणामतः दलितों के आन्दोलन की दिशा ही बदल जाती है | ऐसी स्थिति में दलित मुक्ति के निमित्त किये जाने वाले संघर्षों की दिशा और दशा को उचित कैसे माना जा सकता है !

सन्दर्भ सूची

1. श्यौराज सिंह 'बेचैन', मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं.-30.
2. वही, पृ. सं.- 42.
3. वही, पृ. सं.- 23.
4. तुलसी राम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. सं.-16.
5. वही, पृ. सं.- 16.
6. वही, पृ. सं.- 89.